पूर्ण न्यायपीठ

माननीय न्यायाधीश आर.एस. नरूला, माननीय न्यायाधीश ए.डी. कोशल और माननीय न्यायाधीश एस.एस. संधावालिया के समक्ष

जगजीत मोहन सिंह भल्ला, आदि - अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ आदि - उत्तरदाता

1972 की लेटर्स पेटेंट अपील संख्या 255
6 मई 1974

भारत का संविधान (1950)-अनुच्छेद 14 और 16-सक्षम प्राधिकारी एक विशेष तिथि से सरकारी अधिकारियों के एक वर्ग के संशोधित वेतनमान को मंजूरी देना-मंजूरी की तारीख से अधिकारियों को संशोधित वेतनमान के लाभ से वंचित करने वाला राइडर संलग्न है-ऐसे राइडर- क्या संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 द्वारा प्रभावित किया जा सकता है - आदेश का अमान्य भाग अलग किया जा सकता है - क्या वैध भाग को अक्षुण्ण रखते हुए, अमान्य भाग को रद्द किया जा सकता है।

अभिनिर्धारित, कि एक बार उच्च वेतन या उच्च वेतनमान तय करने का आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित कर दिया जाता है, तो यह आदेश के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति को ऐसे वेतन का दावा करने और उसे वसूलने का कानूनी अधिकार प्रदान करता है। जहां एक सक्षम प्राधिकारी एक विशेष तिथि से सरकारी अधिकारियों के एक वर्ग को उच्च वेतन का संशोधित वेतनमान स्वीकृत करता है, लेकिन बिना किसी औचित्य के एक राइडर जोड़ देता है, जो सिर्फ़ उन अधिकारियों को ही वंचित करता हैं, लाभ से जो संशोधित वेतनमान लागू होने की तारीख से बकाया वेतन को उस उच्च दर पर आवरण किया जा सकता हैं और ऐसा राइडर घृणित भेदभाव से पीड़ित होता है और भारत के

संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 से प्रभावित होता है। ऐसे मामले में जहां वैधानिक मंजूरी, एक सक्षम संवैधानिक प्राधिकारी द्वारा दी गई है, संशोधित वेतनमान के प्रस्ताव को समग्र रूप से स्वीकार करने या इसे हाथ से खारिज करने का सवाल ही नहीं उठता है।यदि मंजूरी आदेश के किसी भी हिस्से की संवैधानिकता के खिलाफ कोई आक्षेप किया जाता है, तो उस पर फैसला सुनाया जाना चाहिए और असंवैधानिक पाए जाने पर उसे रद्द कर दिया जाना चाहिए। यदि आदेश का वह भाग जो रद्द किया गया है, पृथक्करणीय है, तो शेष आदेश फ़ील्ड में रहेगा। हालाँकि, यदि आदेश का अमान्य हिस्सा इसके मूल का निर्माण करता है और इसके रद्द होने के बाद कुछ भी नहीं बचता है, तो पूरा आदेश चला जाता है।

माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री हरबंस सिंह और माननीय श्री न्यायमूर्ति प्रेम चंद जैन की खंडपीठ द्वारा 21 जनवरी, 1974 के आदेश के तहत मामले को कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ के पास भेजा गया। मामले में और माननीय श्री न्यायमूर्ति आर.एस. नरूला, माननीय श्री न्यायमूर्ति ए.डी. कोशल और माननीय श्री न्यायमूर्ति एस.एस. संधावालिया की पूर्ण पीठ ने अंततः 6 मई, 1974 को मामले का फैसला किया।

माननीय श्री न्यायमूर्ति बल राज तुली द्वारा दिए गए 28 अप्रैल 1972 के निर्णय के खिलाफ लेटर्स पेटेंट अपील, लेटर्स पेटेंट के व्यापक खंड एक्स के तहत 1971 के सी.डब्ल्यू. संख्या 880 में की गयीं।

अपीलकर्ताओं की ओर से जे.एन. कौशल, वरिष्ठ अधिवक्ता, एम. आर. अग्निहोत्री, और अशोक भान, उनके साथ अधिवक्ता हैं।
उत्तरदाता की ओर से जे.एस. वासु, महाधिवक्ता, पंजाब, एस.के. सयाल, अधिवक्ता उनके साथ थे।

<u>निर्णय</u>

<u>इस न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश नरूला द्वारा दिया गया था -</u>

अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जगन नाथ कौशल ने हमारे सामने एकमात्र तर्क पेश किया, इस अपील में लेटर्स पेटेंट के खंड 10 के

तहत, विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय ने उनकी रिट याचिका खारिज कर दी (1971 का सिविल रिट 880), यह है कि भारत सरकार के आदेश, दिनांक 23 अप्रैल, 1970 (रिट याचिका का अनुबंध 'सी') में अपीलकर्ताओं को 1 फरवरी, 1968 से 22 अप्रैल 1970 तक उच्च संशोधित वेतनमान के लाभ से वंचित किया गया है और 1 फरवरी, 1968 से अपीलकर्ताओं के लिए इतने उच्च वेतनमान को स्पष्ट रूप से मंजूरी देने के बावजूद भी यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 से प्रभावित है। हालांकि उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान के किसी भी अन्य सदस्य के मामले में ऐसी कोई शर्त नहीं जोड़ी गई है, जिनमें से सभी को 1 फरवरी, 1968 से अपने संबंधित अंतिम संशोधित वेतनमान में बकाया वेतन निकालने की अनुमति दी गई है। जिन परिस्थितियों ने इस प्रश्न को जन्म दिया है वे ये हैं।

(2) 11 जुलाई 1967 की अधिसूचना द्वारा, पंजाब के राज्यपाल ने श्री जस्टिस हरबंस सिंह, जो उस समय इस न्यायालय के न्यायाधीश थे, को शामिल करते हुए एक एकल-व्यक्ति वेतन आयोग का गठन किया, उस आयोग के संदर्भ की शर्तें थीं: -

> "(ए) राज्य सरकार के नियम-निर्माण नियंत्रण के तहत सभी श्रेणियों के कर्मचारियों के विभिन्न वेतनमानों, महंगाई भत्ते, अन्य प्रतिपूरक रियायतों और लाभों की वर्तमान संरचना की व्यापक समीक्षा करना और ऐसे बदलावों की सिफारिश करना या ऐसे कर्मचारियों के वेतनमान की संरचना में युक्तिकरण, जो आवश्यक और व्यवहार्य हो;
> (बी) अपनी सिफारिशें करते समय आयोग नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से राज्य के सामाजिक और आर्थिक दायित्वों को ध्यान में रखेगा।"

हालाँकि पंजाब सरकार के कर्मचारियों की सभी श्रेणियाँ संदर्भ के दायरे में आती हैं, पर उच्च न्यायालय की स्थापना आयोग के संदर्भ की शर्तों के अंतर्गत नहीं आती है क्योंकि उक्त प्रतिष्ठान नियम बनाने की शक्ति के अधीन नहीं है, क्यूँकि पंजाब राज्य, पंजाब और हरियाणा राज्यों और केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ के लिए सामान्य उच्च न्यायालय होने के कारण। हालाँकि, उच्च न्यायालय के

तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश ने आयोग से उच्च न्यायालय की स्थापना पर सेवारत व्यक्तियों की वेतन संरचना पर अनौपचारिक रूप से विचार करने और, अनुशंसा को ध्यान में रखते हुए उनके वेतनमान में संशोधन का सुझाव पंजाब सिविल सचिवालय में अपने समकक्षों के संबंध में, देने के लिए कहा। इस संबंध में वेतन आयोग द्वारा मुख्य न्यायाधीश को एक अलग रिपोर्ट सौंपी गई थी (पंजाब वेतन आयोग 1967-68 की रिपोर्ट के पृष्ठ 107 पर पैराग्राफ 17.1 और 17.2)। चूंकि 1966 में राज्य के पुनर्गठन से पहले उच्च न्यायालय के कर्मचारियों और पंजाब राज्य के समकक्ष पदों पर रहने वाले कर्मचारियों के वेतनमान एक समान हुआ करते थे, मुख्य न्यायाधीश ने उसी को अपनाने की सिफारिश की। मुख्य न्यायाधीश ने उच्च न्यायालय की स्थापना के लिए उसी वेतनमान को अपनाने की सिफारिश की, जिसे पंजाब सरकार ने सचिवालय में मौजूद सामान्य श्रेणियों के पदों के लिए संशोधित किया था।असामान्य श्रेणियों के लिए (जिनके समकक्ष सचिवालय में मौजूद नहीं थे), मुख्य न्यायाधीश द्वारा सचिवालय में विद्यमान तुलनीय पदों के संशोधित वेतनमानों की सिफारिश की गई, जो कि संविधान के अनुच्छेद 231(2) के परंतुक के साथ पठित अनुच्छेद 229(2) के तहत आवश्यक भारत के राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए।जहां तक निजी सचिवों और रीडरों का सवाल है, मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश थी कि उनके पदों को पंजाब सिविल सचिवालय में निजी सचिवों के पदों के बराबर किया जाना चाहिए, और उनके वेतनमान को 1 फरवरी 1968 से संशोधित किया जाना चाहिए, जैसा कि था पुनर्गठित पंजाब राज्य के कर्मचारियों का मामला।

(3) 19 दिसंबर 1969 के आदेश द्वारा (रिट याचिका का अनुबंध 'ए'), उच्च न्यायालय के निजी सचिवों/रीडर्स के पदों के लिए 250-450 रुपये के मौजूदा वेतनमान और पंजाब सिविल सचिवालय में मौजूदा 300-25-600 रुपये के संशोधित वेतनमान के साथ, इस समीकरण को भारत के राष्ट्रपति की मंजूरी को केंद्र सरकार की ओर से चंडीगढ़ प्रशासन को अवगत करा दिया गया है। उस संचार की एक प्रति 7 जनवरी, 1970 को उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को भेजी गई थी। हालाँकि, मुख्य न्यायाधीश उपर्युक्त आदेश से संतुष्ट नहीं थे क्योंकि पंजाब सिविल सचिवालय में निजी सचिवों का वेतनमान पहले ही बढ़ाकर रु. 450-25-500-30-650/ 30-800 तय कर दिया गया था। इसलिए,

उन्होंने समीकरण के विचाराधीन पद के दावा के लिए प्रेस किया सचिवालय में निजी सचिवों के साथ, और उस 450-800 रुपये के संशोधित वेतनमान के लाभ के लिए अपीलकर्ताओं को दिया जा रहा है। मुख्य न्यायाधीश की उक्त सिफ़ारिश को स्वीकार करते समय भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित किया गया था, जिसके अनुसरण में भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा 23 अप्रैल, 1970 (अनुलग्नक 'सी') के पत्र को मंत्रालय ने गृह सचिव, चंडीगढ़ प्रशासन, चंडीगढ़ को जारी किया गया था और उसकी एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को भेजी। पत्र का शीर्षक था:-

> "पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों के निजी सचिवों/रीडरों के वेतनमान में संशोधन।"

> पत्र के मुख्य भाग में यह निम्नानुसार कहा गया था:-

> "उपरोक्त विषय पर आपके पत्र संख्या 360-आईएच (एस)-70/3610, दिनांक 27 फरवरी, 1970 के संदर्भ में, मुझे निर्देशित किया गया हैं, चंडीगढ़ में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों को निजी सचिवों/रीडर्स के पदों के साथ निजी सचिवों के पदों का पंजाब सिविल सचिवालय में, और इन पदों के लिए 450—25—500—30—650—/30—800 रुपये के वेतनमान का निर्धारण, के समीकरण के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी से अवगत कराना। यह मंजूरी 1 फरवरी, 1968 से प्रभावी होगी, लेकिन पिछली अवधि के लिए कोई बकाया देय नहीं होगा।

> 2. यह पत्र वित्त मंत्रालय की सहमति से उनके यू.ओ. संख्या 3272-ई III/ए/70, दिनांक 23 अप्रैल, 1970 के तहत जारी किया जाता है।।"

मैंने उपर्युक्त संचार के उस हिस्से को (इस रिपोर्ट में इटैलिक में) रेखांकित किया है, जो अपीलकर्ताओं के अनुसार, असंवैधानिक है। इसके बाद, 5 सितंबर, 1970 (अनुलग्नक 'बी') के पत्र द्वारा, भारत सरकार ने निर्देश दिया कि समय-मान 350-25-500/30-650 रुपये के वेतनमान को अनुबंध 'ए' के तहत

दिसंबर, 1969 में स्वीकृत, को 300-25-600 रुपये के वेतनमान के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।हालाँकि, उस पत्र का उस प्रस्ताव पर कोई सीधा प्रभाव नहीं है जिसके साथ हम सामना कर रहे हैं क्योंकि यह दोनों पक्षों का सामान्य मामला है सभी अपीलकर्ताओं को उनके संबंधित वेतन में अंतर के कारण बकाया राशि का भुगतान पहले ही कर दिया गया है, जो वे एक तरफ 250-450 रुपये के मूल वेतनमान और दूसरे पर 350-650 रुपये के वेतनमान में ले रहे थे। समान रूप से, यह दोनों पक्षों का सामान्य मामला है कि सभी अपीलकर्ताओं को 23 अप्रैल, 1970 से प्रभावी 450-800 रुपये के संशोधित वेतनमान में वेतन का भुगतान किया गया है। विवाद का एकमात्र समय 1 फरवरी, 1968 से 22 अप्रैल, 1970 तक है। अपीलकर्ता जिन विभिन्न राशियों के हकदार होंगे, वे एक तरफ 350-650 रुपये और दूसरी तरफ 450-800 रुपये के पैमाने पर उनके संबंधित वेतन के बीच अंतर का प्रतिनिधित्व करेंगे, और सटीक राशि उस वेतन की मात्रा पर निर्भर करती है जो कोई विशेष पदधारी उस समय निचले वेतनमान में प्राप्त कर रहा था। बढ़ी हुई दर पर बकाया राशि से वंचित होने से व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने अपना अभ्यावेदन दिनांक 21 अक्टूबर, 1970 को मुख्य न्यायाधीश और न्यायालय के न्यायाधीशों को प्रस्तुत किया (अनुलग्नक 'डी')। उक्त अभ्यावेदन को चंडीगढ़ प्रशासन ने अपने ज्ञापन, दिनांक 21 दिसंबर, 1970 (अनुलग्नक 'डी/1') द्वारा खारिज कर दिया था। इसके चलते अपीलकर्ताओं द्वारा रिट याचिका दायर की गई।

(4) भारत संघ की ओर से दायर लिखित कथन में ऊपर बताए गए तथ्यों पर कोई विवाद नहीं किया गया था और ना ही दाखिल रिटर्न में गृह सचिव, चंडीगढ़ प्रशासन द्वारा। अपीलकर्ताओं के दावे का मुख्य बचाव केंद्र सरकार के रिटर्न के पैराग्राफ 15 में निम्नलिखित शब्दों में कहा गया था: -

> "याचिका के पैराग्राफ 15 में दिए गए कथनों को इस हद तक स्वीकार किया जाता है कि माननीय मुख्य न्यायाधीश ने मुख्य आयुक्त, चंडीगढ़ को संबोधित अपने डी.ओ. नंबर 202-ई/एचसीजे, दिनांक 10 फरवरी, 1970 के तहत इच्छा व्यक्त की थी की उच्च न्यायालय में माननीय न्यायाधीशों के निजी सचिवों/रीडरों के पदों का वेतनमान पंजाब में माननीय मंत्रियों के निजी सचिवों के लिए अनुमेय वेतनमान के बराबर

किया जाना चाहिए। इस प्रकार यह सुझाव दिया गया कि निजी सचिवों/ उच्च न्यायालय में माननीय न्यायाधीशों के पाठकों को 450-800 रुपये का वेतनमान दिया जाना चाहिए। यह गलत है कि माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा मांगे गए वेतनमान के इस समीकरण का वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में वेतनमान संशोधन से कोई लेना-देना है।। यह गलत है कि वेतनमान को 1 फरवरी, 1968 से प्रभावी बनाने की सिफारिश की गई थी।"

(5) विद्वान एकल न्यायाधीश ने उत्तरदाताओं की इस बात पर भी गौर किया कि अपीलकर्ताओं के वेतनमान का पुनरीक्षण "रियायत" का मामला था और उक्त रियायत इस शर्त पर दी गई थी कि बकाया का उन्हें भुगतान नहीं होगा। हालाँकि, रियायती मामले के रूप में वेतन के पुनरीक्षण की वास्तव में अनुमति के बारे में कोई निश्चित निष्कर्ष विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज नहीं किया गया था, और, मेरी राय में, यह सही है, क्योंकि ऐसा करना आवश्यक नहीं था। क्या वेतनमान को रियायत के रूप में संशोधित किया गया था या नीति के मामले के रूप में किया गया या किसी प्रकार की मजबूरी के तहत या अन्यथा, उस प्रश्न के लिए प्रासंगिक नहीं है जिसका उत्तर देने के लिए हमें बुलाया गया है। यह सही है कि अपीलकर्ताओं को यह दावा करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था कि उनका वेतन बढ़ाया जाना चाहिए। यह भी सही है कि एक सरकारी कर्मचारी की परिलब्धियाँ और उसकी सेवा की शर्तें नियमों द्वारा शासित होती हैं जिन्हें कर्मचारी की सहमति के बिना सरकार द्वारा एकतरफा बदला जा सकता है। हमारे समक्ष यह विवाद नहीं किया गया है कि जिस वेतनमान में अपीलकर्ताओं को उनका वेतन दिया जाना था वह उनकी सेवा की शर्त थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्धारित किया कि जो आदेश 23 अप्रैल 1970 (अनुलग्नक 'सी') को सूचित किया गया, उसे समग्र रूप से स्वीकार या अस्वीकार किया जाना था, और अपीलकर्ताओं के लिए यह खुला नहीं था कि वे अपने वेतन में वृद्धि को बनाए रखने के लिए इसका एक हिस्सा स्वीकार करें, और बकाया राशि को रद्द करने की शर्त को रद्द करने की मांग करें। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह न्यायालय को निर्देश देने का काम नहीं है कि सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कैसे और किस हद तक और यहां यह तक कि किस तारीख से वृद्धि की जाए। विद्वान न्यायाधीश की टिप्पणियों का इस आशय से

कोई अपवाद नहीं है कि अपीलकर्ताओं को उनके लिए निर्धारित उच्च वेतनमान के अनुसार बकाया वेतन से वंचित करना उन्हें बहुत अन्यायपूर्ण लगा, जबकि वह लाभ उच्च न्यायालय के हर दूसरे कर्मचारी को दिया गया था।इस मामला को पंजाब राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा हमारे सामने रखा गया, जिन्होंने सरकार की ओर से इस अपील का बचाव किया। हालाँकि, उन्होंने कहा कि विद्वान न्यायाधीश यह देखने में सही थे कि यद्यपि अपीलकर्ताओं के पास वेतन के बकाया से वंचित होने के मामले में एक वास्तविक शिकायत थी, हालांकि यह उच्च न्यायालय के हर दूसरे कर्मचारी को दिया गया था, तो सरकार के लिए था उस शिकायत का निवारण करना। हालाँकि, किसी भी उत्तरदाता के लिखित कथन में उस तारीख के मामले में अपीलकर्ताओं के साथ पूरे शेष उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान से अलग व्यवहार करने के किसी विशेष कारण के बारे में कोई औचित्य नहीं दिया गया था, जिससे वे संशोधित वेतनमान पर बकाया राशि प्राप्त करेंगे, और विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपील के तहत अपने फैसले में कहा कि ऐसा हो सकता है कि सरकार ने वेतनमान में बहुत अधिक वृद्धि की अनुमति देते समय सोचा था कि विवाद की अवधि के लिए 350-650 रुपये का वेतनमान पर्याप्त था और इसलिए, वेतनमान में वृद्धि के कारण अपीलकर्ताओं को कोई अतिरिक्त राशि की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। विद्वान महाधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि हमारे सामने रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर वह उस तर्क को आगे बढ़ा सके या लागू कर सके। हालाँकि, उन्होंने इस तर्क को अपनाया और जोर दिया कि यह सरकार का काम है कि वह अपनी शर्तों पर वृद्धि की अनुमति दे और यह इस न्यायालय का काम नहीं है कि वह केंद्र सरकार को किसी विशेष तरीके से या किसी विशेष तिथि से वृद्धि की अनुमति देने का निर्देश दे।

(6) 28 अप्रैल 1972 के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ इस अपील में, रिट याचिका को खारिज कर दिया गया, श्री कौशल, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दी गई रियायत विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष, वापस ले ली, उनके द्वारा कानून के एक प्रश्न पर यह प्रस्तुत करते हुए कि वह अब इस प्रस्ताव से सहमत नहीं है कि यदि केंद्र सरकार ने निर्देश दिया होता कि संशोधित वेतनमान 23 अप्रैल, 1970 से लागू होगा, तो अपीलकर्ताओं को 1 फरवरी, 1968 से बकाया राशि का दावा करने का कोई अधिकार नहीं

होगा।उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सही किया की उपरोक्त प्रभाव के लिए अपनी रियायत को अपील के तहत निर्णय में शामिल किया, लेकिन तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए विषय पर कानून की अनदेखी में रियायत दी गई थी।

(7) विवाद के गुण-दोष पर श्री कौशल की दलीलें न तो लंबी थीं और न ही जटिल थी। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के अपने आधिपत्य के निर्णय के अधिकार पर प्रस्तुत किया, **श्री राम कृष्ण डालमिया बनाम श्री न्यायमूर्ति एस. आर. तेंडोलकर और अन्य (ए.आई.आर., (1958), एस: सी: 538)**, कि अपीलकर्ताओं के साथ स्पष्ट रूप से भेदभाव किया गया है जिस तारीख से वे अंतिम संशोधित वेतनमान में अपने वेतन का बकाया निकालने के हकदार हैं, उस संबंध में राज्य , संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत चुनौती को सफलतापूर्वक तभी पूरा कर सकता है, जब वह संतुष्ट करने में सक्षम हो न्यायालय के समक्ष कि:-

(i) इस न्यायालय के निजी सचिवों और रीडरों को बोधगम्य अंतर के आधार पर एक अलग श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है जो निजी सचिवों और रीडरों को बाकी उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान से अलग करता है; और

(ii) इस तरह के अंतर का उस उद्देश्य के साथ एक तर्कसंगत संबंध है जिसे एक अलग तारीख तय करके हासिल किया जाना है, जिससे उन्हें इस न्यायालय की स्थापना के बाकी हिस्सों की तुलना में अपने वेतन का बकाया निकालना होगा।

अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान की विभिन्न अन्य श्रेणियों से भिन्न वेतनमान तय करने के दृष्टिकोण से, निजी सचिव और रीडर वास्तव में अलग दिख सकते हैं और उन्हें एक अलग वर्ग के रूप में माना जा सकता है, और वेतनमान के मामले में इस विशेष वर्ग और उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान के अन्य वर्गों के बीच अंतर का इस विशेष वर्ग और उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान के अन्य वर्गों का सभी कर्मचारियों के लिए एक समान सीमा तक वेतनमान को पूर्वव्यापी प्रभाव न देकर प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई उचित संबंध नहीं है। आदेश के अनुलग्नक 'सी' में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उसमें

शामिल विवादित राइडर को जोड़ने को उचित ठहराता हो, जो उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान की किसी भी अन्य श्रेणी के लिए नहीं जोड़ा गया था, जिसमें सहायक रजिस्ट्रार और उप रजिस्ट्रार आदि जैसे प्रतिष्ठान के उच्च अधिकारी भी शामिल थे। यह महत्वपूर्ण है कि उत्तरदाताओं के लिखित कथनो में भी, अंतर और उसके द्वारा प्राप्त की जाने वाले उद्देश्य के बीच ऐसा कोई तर्कसंगत संबंध प्रकट नहीं किया गया है। जैसा कि उनके आधिपत्य द्वारा प्रेक्षित किया गया श्री राम कृष्ण डालमिया के मामले में सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रा) द्वारा, संवैधानिकता की प्रकल्पना को इस हद तक नहीं ले जाया जा सकता है कि कुछ अज्ञात कारण होने चाहिए, कुछ व्यक्तियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करने के लिए। फिर से **सतवंत सिंह साहनी बनाम डी. रामरत्नम, सहायक पासपोर्ट अधिकारी, नई दिल्ली, और अन्य (ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1836.)**, में, यह मानते हुए कि कानून के समक्ष समानता का सिद्धांत कानून द्वारा स्वीकार किए गए शासन की उच्च अवधारणा के लिए एक आवश्यक परिणाम है। भारत के संविधान में यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया था कि विधि-नियम का एक पहलू यह है कि कोई भी कार्यकारी कार्रवाई, यदि वह किसी व्यक्ति के पूर्वाग्रह के लिए संचालित होती है, तो भेदभावपूर्ण नहीं होनी चाहिए क्योंकि कार्यकारिणी स्पष्ट रूप से वह नहीं कर सकती जो विधान-मंडल नहीं कर सकती।

(8) श्री कौशल द्वारा **भारत संघ बनाम शांति स्वरूप टिकट कलेक्टर, उत्तर रेलवे, दिल्ली (1969 एस.एल.आर. 210. (4) 1967)** मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की डिवीजन पीठ के निर्णय से भी उनके द्वारा प्रचारित प्रस्ताव के लिए सहायता ली गयी थी। केंद्रीय वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के अनुसार, 1 जनवरी, 1947 से पूर्वी पंजाब रेलवे के नंबर टेकरों सहित सभी रेलवे के नंबर टेकरों को संशोधित वेतनमान की अनुमति देते हुए, अंतिम उल्लिखित रेलवे का दिल्ली मंडल उपरोक्त तिथि से संशोधित वेतनमान के लाभ से वंचित था। दिल्ली डिवीजन में कार्यरत नंबर टेकर्स को छोड़कर, रेलवे प्रतिष्ठान में सभी तुलनीय और समान श्रेणियों, अर्थात् ट्रेन क्लर्क, टिकट कलेक्टर, जूनियर क्लर्क और अन्य नंबर टेकर्स को संशोधित वेतनमान की अनुमति दी गई थी। दिल्ली उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश, जिन्होंने दस नंबर लेने वालों की रिट याचिकाओं पर सुनवाई की, ने निर्धारित किया कि दिल्ली डिवीजन में उनकी श्रेणी के व्यक्तियों के साथ अवैध रूप से भेदभाव किया गया था। दिल्ली

उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भारत संघ की अपील पर सुनवाई की उस विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के खिलाफ और यह निर्धारित किया कि दिल्ली डिवीजन के नंबर लेने वालों ने अन्य भारतीय रेलवे में अपने तुलनीय लोगों के साथ एक ही वर्ग का गठन किया और चूंकि अकेले उनके साथ दूसरों से अलग व्यवहार किया गया था, यह संविधान के अनुच्छेद 14 का स्पष्ट रूप से उल्लंघन का मामला था।

(9) सर्वोच्च न्यायालय के हाल ही लिए गए निर्णय के अंतर्गत आने वाले मामले में **बिशन चंद खन्ना और अन्य बनाम नगर निगम, दिल्ली और अन्य (1967 की रिट याचिका संख्या 42 पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 12 मार्च, 1968को निर्णय लिया गया)** , दिल्ली नगर निगम के ग्यारह कर्मचारियों द्वारा शिकायत की गई थी, की स्नातक भत्ते का भुगतान निगम द्वारा उन्हें नहीं किया गया है, जबकि अन्य सभी स्नातक कर्मचारियों को इसका भुगतान किया जा रहा है। संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत बिशन चंद खन्ना और अन्य की रिट याचिका को अनुमति देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय के आधिपत्य ने निर्धारित किया कि यह भेदभाव का एक स्पष्ट मामला था क्योंकि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि उनके सामने ग्यारह याचिकाकर्ताओं उन लोगों के मामले से अलग जो स्नातक भत्ता प्राप्त कर रहे थे। मामले की सभी परिस्थितियों पर उचित विचार करने के बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली नगर निगम को आदेश दिया कि वह रिट-याचिकाकर्ताओं को 25 सितंबर, 1964 से उसी तरीके से और समान अवधि के लिए 20 रुपये प्रति माह के स्नातक भत्ते का लाभ देने की अनुमति दे और वो भी उन्हीं शर्तों पर, जैसे उन लोगों को इसकी अनुमति दी गई थी जो लोअर डिवीजन क्लर्क के रूप में भत्ते के हकदार बन गए थे। मामले की एक रिपोर्ट (1935-1973) 1 सुप्रीम कोर्ट सर्विस लॉ जजमेंट 316 में छपी है।

(10) **पुरुषोत्तम लाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1973 (1) एस.एल.आर. 633.)** में, यह निर्धारित किया गया कि केंद्र सरकार ने संदर्भ के अंतर्गत आने वाले सभी सरकारी कर्मचारियों के संबंध में वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है और केवल कुछ कर्मचारियों के संबंध में रिपोर्ट लागू करना संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है। भारत

संघ की ओर से सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि वेतन आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करना सरकार का काम है, और ऐसा करते समय यह निर्धारित करना है कि किस श्रेणी के कर्मचारियों को संदर्भ की शर्तों में शामिल किया जाना चाहिए। उनके आधिपत्य ने उस सबमिशन को खारिज कर दिया और निर्धारित किया कि यदि सरकार ने सभी सरकारी कर्मचारियों के संबंध में संदर्भ दिया था, और उसने सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था, तो वह अपने सभी कर्मचारियों के संबंध में इसे लागू करने के लिए बाध्य थी। उच्च न्यायालय प्रतिष्ठान के वेतन में प्रस्तावित वृद्धि के संबंध में अनुच्छेद 229(2) के तहत मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश वेतन आयोग की रिपोर्ट की तुलना में उच्च स्तर पर है। मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया गया है, लेकिन इसके कार्यान्वयन में राइडर जोड़ने से अपीलकर्ताओं के खिलाफ भेदभाव होता प्रतीत होता है। अपीलकर्ताओं का पदनाम पूरी तरह से मुख्य न्यायाधीश के हाथों में था। राज्यपाल की मंजूरी (तत्काल मामले में भारत के राष्ट्रपति, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 231(2) के प्रावधान के कारण) यह केवल संविधान के अनुच्छेद 229 के खंड (2) के परंतुक की आवश्यकता के कारण आवश्यक था। वह मंजूरी भारत के राष्ट्रपति द्वारा विधिवत प्रदान की गई थी।

(11) यह सवाल कि क्या रिट किसी प्रशासनिक आदेश को लागू करने या इस आधार पर राहत का दावा करने के लिए निहित है कि ऐसा आदेश या उसका कोई हिस्सा मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी तय किया गया है। **भारत संघ बनाम के.पी. जोसेफ और अन्य (ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 303.)**मामले में, यह निर्धारित किया कि प्रशासनिक आदेश हैं जो अधिकार प्रदान करते हैं और कर्तव्य लगाते हैं, और यही कारण है कि न्यायालयों ने इस क्षेत्र में भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को आयात किया है। **लालजी दुबे और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1974 (1) एस.एल.आर. 416.)** में, यह उनके आधिपत्य द्वारा निर्धारित किया था कि सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता जो अन्य चेकर्स के समान कर्तव्यों का पालन कर रहे थे, जिन्हें लोअर डिवीजन क्लर्क के रूप में, नामित करने वाले आदेश का लाभ दिया गया था, उन्हें मनमाने ढंग से उक्त आदेश के लाभ से इनकार कर दिया गया था, और इसलिए, उनके साथ भेदभाव किया गया था।

(12) पंजाब राज्य के विद्वान महाधिवक्ता श्री जोगिंदर सिंह वासु, जो उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित हुए, ने तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं को संशोधित वेतनमान पर बकाया वेतन का दावा करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था क्योंकि वेतनमान में संशोधन, राज्य का एक मात्र उपहार था और जहां तक अपीलकर्ताओं का संबंध है, तो किसी भी मामले में संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। चूंकि **बिहार राज्य बनाम अब्दुल माजिद (ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 245)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद, मैंने पहली बार सुना है कि सरकार की ओर से इस बात की वकालत की जा रही है कि सरकारी कर्मचारी के वेतन का मामला है इनाम का हैं। सरकार किसी भी वेतन को तय कर सकती है, उसे बढ़ा सकती है या उचित सेवा नियमों द्वारा एकतरफा कम भी कर सकती है, लेकिन एक बार जब एक सक्षम प्राधिकारी किसी सरकारी कर्मचारी या सरकारी कर्मचारियों की श्रेणी का वेतनमान तय कर देता है, इसके एक इनाम या रियायत या मामला का अनुग्रह होने का सवाल महत्वहीन हो जाता है। **एस. राजिंदर पाल सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (ए.आई.आर. 1968 पी.बी. एवं हरियाणा 19)** में मेरे निर्णय के आधार पर श्री वासु के तर्क में कोई ताकत नहीं है, चूँकि प्रतिपूरक भत्ते को अधिकार के रूप में वसूली योग्य नहीं माना गया है, तो वेतन को भी इतना ही रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार महंगाई भत्ते का मामला **[मध्य प्रदेश राज्य बनाम जी.सी. मंडावर (ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 493.)]** हमारे समक्ष मौजूद मामले से कोई समानता नहीं रखता है जहां सवाल, सरकार द्वारा तय पैमाने जो उस तारीख से प्रभावी होगा जिस दिन से नया वेतनमान लागू किया गया है, पर वेतन के बकाया का दावा करने के अधिकार का हैं। इसी तरह, **के.वी. राजलक्ष्मैया शेट्टी और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य (एटीआर. 1997 एस.सी. 993)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में कहा गया है कि रियायत को अधिकार की तरह से माँगने का दावा नहीं किया जा सकता है, और मैंडेमस की रिट किसी प्राधिकारी को अनुग्रह दिखाने का आदेश जारी नहीं कर सकती और यह मौजूदा मामले के लिए प्रासंगिक नहीं है क्योंकि जिस तारीख से ऐसी दर तय की गई है, उस तारीख से सरकार द्वारा निर्धारित दर पर वेतन वसूल करने के सरकारी कर्मचारी के अधिकार को किसी भी तरह से रियायत नहीं कहा जा सकता है। इसी कारण से, **मेसर्स रामचंद जगदीश चंद**

बनाम भारत संघ और अन्य (ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 563) में सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य की टिप्पणियों का भी उत्तरदाताओं के लिए कोई फायदा नहीं हुआ।

(13) एक बार जब सक्षम प्राधिकारी द्वारा उच्च वेतन या उच्च वेतनमान तय करने का आदेश पारित कर दिया जाता है, तो यह आदेश के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को ऐसे वेतन का दावा करने और वसूल करने का कानूनी अधिकार प्रदान करता है। यह संभव है कि यदि सरकार ने निजी सचिवों और रीडरों के वेतनमान को शुरू में 300-600 रुपये या बाद में 450-800 रुपये तक संशोधित करने से इनकार कर दिया होता, तो हमारे समक्ष अपीलकर्ताओं को कोई शिकायत नहीं रही होगी। हालाँकि, तथ्य यह है कि मौजूदा मामले में, सक्षम सरकार ने पैमाने को संशोधित किया है। अनुलग्नक 'सी' द्वारा अपीलकर्ताओं को वेतन के एक विशेष ग्रेड में तय करने के उद्देश्य से न केवल पंजाब सिविल सचिवालय में निजी सचिवों के बराबर किया गया, बल्कि 1 फरवरी, 1968 से संशोधित वेतनमान की भी अनुमति दी गई। ऐसे मामले में जहां एक सक्षम संवैधानिक प्राधिकारी द्वारा वैधानिक मंजूरी दी जाती है, सरकार द्वारा दिए गए प्रस्ताव को समग्र रूप से स्वीकार करने या इसे खारिज करने का सवाल ही नहीं उठता है। यदि ऐसे आदेश के किसी भाग की संवैधानिकता के विरुद्ध कोई आक्षेप किया जाता है, तो उस पर निर्णय देना होगा। यदि आदेश का कोई भी भाग असंवैधानिक पाया जाता है, तो उसे रद्द करना होगा। यदि आदेश का वह भाग जो रद्द किया गया है, अलग करने योग्य है, तो शेष आदेश फ़ील्ड में धारण रहेगा। हालाँकि, यदि आदेश का निर्थक हिस्सा इसके मूल का निर्माण करता है और इसके रद्द होने के बाद कुछ भी नहीं बचता है, तो पूरा आदेश चला जाता है। वर्तमान मामले में, मुझे ऐसा प्रतीत होता है की 1 फरवरी 1968 से संशोधित वेतनमान स्वीकृत होने के बावजूद, अपीलकर्ताओं को संशोधित वेतनमान लागू होने की तारीख से उस दर पर बकाया वेतन की वसूली के लाभ से वंचित करने वाला राइडर घृणित भेदभाव से ग्रस्त है और और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 से प्रभावित है, और इसलिए, रद्द किये जाने योग्य है। आदेश का भेदभावपूर्ण हिस्सा अनुबंध 'सी' में निहित राष्ट्रपति की पिछली मंजूरी से अलग किया जा सकता है। मैंने पहले ही प्रेक्षित किया हैं कि उत्तरदाताओं की ओर से दायर शपथपत्र में अपीलकर्ताओं को

उस तारीख से संशोधित दरों पर वेतन वसूल करने के अधिकार से स्पष्ट रूप से वंचित करने के लिए कोई औचित्य पेश नहीं किया गया है, जिस तारीख से उक्त वेतनमान लागू किया गया है। यह स्वीकृत किया गया है कि उच्च न्यायालय के किसी भी अन्य कर्मचारी को 1 फरवरी, 1968 से संशोधित वेतनमान में बकाया वेतन की वसूली के अधिकार से वंचित नहीं किया गया है।

(17) उपरोक्त कारणों से हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को रद्द करते हैं, और रिट याचिका को स्वीकार करते हुए मानते हैं कि अनुबंध 'सी' (मेरे द्वारा रेखांकित) में रेखांकित राइडर, इस न्यायालय के निजी सचिवों और पाठकों को वंचित करता है, अंतिम रूप से संशोधित वेतनमान (450-800 रुपये) के अनुसार उनके संबंधित वेतन के बीच अंतर का भुगतान प्राप्त करने से और 1 फरवरी 1968 से 22 अप्रैल 1970 तक की अवधि के लिए जिस पैमाने पर उन्होंने वास्तव में अपना वेतन (350-650 रुपये) प्राप्त किया, वह अमान्य और अप्रभावी है और अपीलकर्ता उक्त बकाया के भुगतान के हकदार हैं। मामले की परिस्थितियों में पार्टियों को अपनी लागत वहन करने के लिए छोड़ दिया गया है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

ऋतु तंवर

प्रिशक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

हरियाणा न्यायिक सर्विसेज़